श्रीमद् भगवद्गीता में वर्णित दैवीय तथा आसुरी मानव-स्वभाव

डॉ0 (श्रीमती) श्रीलेखा चौबे
एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत)
बी.पी.एस.इंस्टीट्यूट ऑफ हायर लर्निंग, (भक्त फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय), खानपुरकलां, सोनीपत।

संक्षेपिका–

श्रीमद् भगवद्गीता भारतीय संस्कृति एवं आध्यात्मिक साहित्य की बहुमूल्य धरोहर है। अपनी अद्वितीय गुणवत्ता के कारण यह विश्व भर में चिरकाल से ही चाही और सराही गयी है। इस ग्रन्थ में आत्मा की अमरता, मृत्यु की अपरिहार्यता, निष्काम कर्मयोग, यज्ञ के विराट् स्वरूप एवं स्थितप्रज्ञता जैसे अद्भुत तथ्यों के समानान्तर ही विभिन्न चित्तवृत्तियों वाले एवं चेतना के अलग–अलग सोपानों पर स्थित मानवीय स्वभावों की विविधता को इतनी कुशलता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि यह ग्रन्थ 'कृष्ण–अर्जुन संवाद' भर नहीं रह जाता बल्कि इसके संपूर्ण कलेवर को मानवीय सभ्यता की अनमोल गाथा का रूप प्राप्त हो जाता है। वास्तव में देखा जाए तो इस पृथ्वी पर लड़े गये विश्व के समस्त युद्ध मानव–मन की दैवी–आसुरी प्रवृत्तियों के टकराव का ही प्रतिफल है। अतः भगवद्गीता हमें सिखाती है कि हृदय में वैर भाव को रखकर या बढ़ाकर युद्ध को समाप्त नहीं किया जा सकता बल्कि दैवी तथा आसुरी सम्पद् में भेद को भलीभॉति समझ कर ही उससे छुटकारा पाया जा सकता है। महाभारत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो पाण्डव दैवीय स्वभाव एवं कौरव आसुरी प्रवृत्ति अथवा स्वभाव के प्रतीक हैं।समष्टि के कल्याण हेतु आत्म–त्याग करने का भाव दैवीय वृत्ति के मूल में निहित होता है। इसके ठीक विपरीत आत्म सुख के लिए परपीड़ा अथवा लोगों का उत्पीड़न करना आसुरी स्वभाव के केन्द्र में व्याप्त होता है।

कुंजी शब्दः प्रकृति, दैवीय संपद्, आसुरी संपद, कर्मफल, सत्वगुण, तमोगुण मोक्ष।

प्रस्तावनाः–

जीवन को जीने की कला ठीक से जान पाना मनुष्य की जिज्ञासा का शाश्वत अंश रहा है।महर्षि व्यास ने अपने ग्रन्थ महाभारत में मनुष्य की इस जिज्ञासा का बड़ी कुशलता से समाधान किया है। उन्होंने 'भीष्मपर्व' नामक छठें पर्व में भगवद्गीता के रुप में कृष्णार्जुन संवाद के माध्यम से जीवन और मृत्यु के

ISSN 2321-0567
Vol. X, Issue II (Oct. – 2022)

आधारभूत तथ्यों का प्रकाशन करते हुए भिन्न–भिन्न मानवीय स्वभावों एवं तत्संम्बन्धित चित्तवृत्तियों की भी सूक्ष्म विवेचना कर दी है। भगवद्गीता के 16 वें अध्याय में सत्व–रज–तम रूप त्रिगुणों की प्रधानता के क्रमानुसार तीन प्रकार की मानवीय प्रकृतियों का उल्लेख भी किया गया है। इनमें से 'दैवीय' प्रकृति सात्विक होती है, 'आसुरी' प्रकृति राजसिक है तथा 'राक्षसी' प्रकृति तामसिक कही गई है। दैवी तथा आसुरी प्रकृतियों का गीता में विस्तृत विवेचन किया गया है जबकि आसुरी एवं राक्षसी प्रकृतियों के स्वरुप में साम्य होने के कारण उन्हें लगभग एक सी ही मानते हुए उसका पृथक रुप से विस्तार नहीं किया गया हैं।

भगवद्गीता मनुष्य के शील एवं आचरण को ही उसकी वास्तविक सम्पत्ति के रूप में देखती है। दैवीय संपद् मनुष्य की उच्च प्रकृति से सम्बद्ध है जबकि आसुरी संपद् मानव की निम्न प्रकृति से सम्बद्ध है। सद्गुण एवं दुर्गुण के रूप में समाज एवं प्रणियों में इसका प्रभाव दिखाई देता है। व्यक्तिगत जीवन में भय, मलिनता अज्ञान, दम्भ, दर्प, अभिमान तथा क्रोध आदि दुर्गुण मनुष्य को असुर बनाते हैं। जबकि उसका निर्भय, ज्ञानी एवं प्रेममय होना दैवीय स्वभाव से परिपूरित होना है । यही गुण उसे परमात्मा की ओर ले जाते हैं। सामाजिक दुर्गुणों को दूर करना और विश्व को एकता के सूत्र में ग्रथित करना सामाजिक दृष्टि से दैवीय सम्पद् है। स्वार्थपूर्ण आचरण एवं भौतिक सम्पत्तियों का लोभ आसुरी वृत्ति का पोषक है। कौरवों एवं पाण्डवों के मध्य होने वाला संग्राम वास्तव में मानव–मन में व्याप्त आसुरी एवं दैवीय वृत्तियों का ही पारस्परिक संग्राम था। त्रिगुणात्मक प्रकृति के रज एवं तम रूप प्रभावों से बॅधे रहना ही आसुरी प्रकृति है। वहीं दूसरी ओर सत्वमयी अवस्था में प्राकृतिक निम्नता से परे जाकर परमात्मा से संयुक्त होने का प्रयास प्राणियों का दैवीय स्वभाव कहलाता है –

राक्षसीम् आसुरीम् चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ।।1 (9/12)

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीम् प्रकृतिम् आश्रिताः ।2 (9/13)

दैवीय मानव स्वभाव :–

भगवद्गीता के अनुसार निर्भयता, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान और योग में निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप और सरलता दैवीय प्रकृति वाले प्राणियों की विशेषताऍ हैं। अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दूसरों के दोष न देखना, प्राणियों पर दया करना, लोभ न करना, स्वभाव में मृदुता रखना, लज्जाशीलता, तेज, क्षमा, धैर्य, पवित्रता, किसी के साथ द्वेष न रखना, अभिमान न करना ही ऐसे प्राणियों का जन्मजात स्वभाव होता है –

अभयं सत्त्वसंभुाद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।दानं दमभच यज्ञभच स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेश्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता। भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।3 (16/1–3)

इस प्रकार भगवद्गीता में दैवी सम्पद् के 26 प्रधान गुण गिनाए गये हैं। जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि दैवी सम्पद् से युक्त मनुष्य सभी प्राणियों के प्रति द्वेष भाव से रहित, स्वार्थभाव–रहित, प्राणि मात्र के प्रेमी तथा अकारण ही दयालु होते है।

ISSN 2321–0567
Vol. X, Issue II (Oct. – 2022)

ये सुख–दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान् होते है। ये इन्द्रियों सहित शरीर एवं मन को वश में किए हुए परमतत्व की प्राप्ति का ध्येय लेकर जीवन धारण करते हैं। ऐसा पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर–भीतर से शुद्ध ,चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से मुक्त होता है। दैवीय सम्पद् के धनी प्राणी न हर्षित होते हैं, न द्वेष करते हैं, न शोक करते हैं, न कामना करते हैं बल्कि वह शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों के परित्यागी होते हैं। वे शत्रु और मित्र में मान तथा अपमान में एक समान बने रहते हैं –

अद्वेश्टा सर्वभूतानां मैत्रःकरुण एव च। निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी।।

संतुश्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निभचयः। मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स में प्रियः।। 4(12/13–14)

श्रीकृष्ण दैवी सम्पद् की प्रधानता रखने वाले प्राणियों के बारे में बताते हुए कहते हैं कि ऐसा मनुष्य ज्ञानाभिमुख और सत्व–वृत्ति के प्रकाश से आच्छादित रहता है। वास्तव में, ऐसे लोगों का आहार भी आसुरी वृत्ति वाले साधकों से भिन्न प्रकार का होता है। सात्विक वृत्ति वालों को बल और आरोग्य प्रदान करने वाले रसीले और स्निग्ध फल प्रिय होते है–

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः।।5 (17/8)

दैवी प्रकृति के सत्वगुणी महात्मा सदा परमात्मा का चिन्तन करते हुए ,कीर्तन करते हुए, गुणगान करते हुए, निरन्तर अपने निश्चय पर डटे रहते है और भक्ति के सूत्र में बॅधे हुए भगवान् की उपासना करते रहते हैं–

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तभच दृढव्रता ः।

नमस्यन्तभच मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते।।6 (9/14)

इस प्रकार के प्राणी सुख दुःख को समदृष्टि से देखते हुए अपने में ही स्थिर रहते हैं।

वे मिट्टी के ढ़ेले, पत्थर और सोने को पृथक भाव से न देखकर एक जैसा ही समझते हैं। वे प्रिय–अप्रिय,निन्दा–स्तुति सभी में एकरूपता धारण करते हैः–

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोश्ठाभमकाञ्चनः।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।7 (14/24)

आसुरी मानव स्वभाव– श्रीकृष्ण जी आसुरी सम्पद् की प्रधानता रखने वाले प्राणियों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आहार की दृष्टि से आसुरी प्रवृत्ति वालों की अभिरुचि नीरस,सड़े हुए, बासी तथा जूठे भोजन में होती है–

यातयामं गतरसं पूतिः पर्युशितं च यत्।

उच्छिश्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।8 (17/10)

ऐसे लोग लौकिक भोगों को ही सर्वस्व मान बैठते हैं। अगणित चिन्ताओं में पड़े हुए कीट की भॉति अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिए अन्यायपूर्ण उपायों के द्वारा अधिकतम संपत्तियों का संचय कर लेना ही उनके जीवन का ध्येय होता है–

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः। कामोपभोगपरमा एतावदिति निभिचताः।।

ISSN 2321-0567
Vol. X, Issue II (Oct. – 2022)

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान्।।9(16/11–12)

आज मैंने इस शत्रु को मार डाला, कल अन्य शत्रुओं को भी मार डालूँगा। मैं ईश्वर हूँ, मैं ही भोग करने वाला हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, बलवान और सुखी हूँ। चित्त की अनेक भ्रान्तियों में पड़े हुए, मोह जाल में फॅसे हुए, विषय भोगों में आसक्त ऐसे लोग मरणोपरान्त अपवित्र नरक में स्थान पाते हैं –

इदमद्यमयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्। इदमस्तीदमपि में भविश्यति पुनर्धनम्।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिश्ये चापरानपि। ईभवरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योस्ति सदृशो मया। यक्ष्ये दास्यामि मोदिश्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजाल समावृत्ताः। प्रसक्ताः कामभोगेशु पतन्ति नरकेऽशुचौ।।10(16/13–16)

अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले ऐसे घमंडी पुरुष धन और अहंकार में डूब कर केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्डपूर्वक शास्त्रविधिरहित यजन–कर्म करते हैं। ऐसे पुरुष पर निन्दक होते हैं और दूसरों के शरीर में स्थित परमात्म तत्व से द्वेष करने वाले होते हैं। अतः ऐसे पापाचारियों को संसार में बार–बार अशुभ योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ऐसे लोगों का ज्ञान, कर्म, आशा, सब व्यर्थ चला जाता है। वास्तव में, इस प्रकार के प्राणी विवेकहीन होते हैं। आसुरी स्वभाव के कारण ये परमात्मा को समझ ही नहीं पाते हैं–

दम्भो दर्पोऽभिमानभच क्रोधः पारुश्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थं संपदमासुरीम् ।। 11(16/4)

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः। न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेशु विद्यते।।

असत्यमप्रतिशठं ते जगदाहुरनीभवरम्। अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्।।

एतां दृश्टिमवश्टभ्य नश्टात्मानोऽल्पबुद्धयः। प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः।।

काममाश्रित्य दुश्पूरं दम्भमानमदान्विताः। मोहाद् गृहीत्वाऽसद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।। 12(16/7–10)

श्रीकृष्ण के मतानुंसार आसुरी वृत्ति के व्यक्ति को विनाश की ओर ले जाने वाले तीन मुख्य द्वार हैं –काम, क्रोध तथा लोभ। प्राणियों की संसार यात्रा में ये तीन दुर्गुण ही समस्त प्रकार के अनर्थों को आमंत्रित करते हैं। इन्हीं के वशीभूत होकर मनुष्य अधोगति को प्राप्त करता है। अतः आत्मकल्याण पथ के पथिक को चाहिए कि वह इनका परित्याग करे–

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।।13 (16/21)

इनसे मुक्त होकर शुभकर्मों का आचरण करते हुए ही मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है। इसके विपरीत जो शास्त्रोक्त कर्मों को छोड़कर मनमाना आचरण करते हैं उसे न तो सांसारिक सुख मिलता है न उत्तम गति ही प्राप्त होती है–

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।14 (16/23)

ISSN 2321-0567
Vol. X, Issue II (Oct. – 2022)

उपसंहारः–

वास्तव में, गीता विवेकशील प्राणियों के लिए धर्मज्ञान का कोष है। प्रकृति, आत्मा एवं पर्यावरण सर्वत्र व्याप्त द्विविध वृत्तियों के शुभाशुभ स्वरूप का आकल्पन एवं व्याख्यान श्रीमद् भगवद्गीता के 16वें अध्याय में कृष्णार्जुन संवाद के माध्यम से अत्यंत रुचिर रूप में हुआ है। इसमें आसुरी सम्पद् की दुर्बलताएॅं संक्षेप में कही गई हैं (6 गुण गिनाए गये हैं)। नकारात्मक तथ्यों का विस्तृत विवेचन पाठकों में वैरस्य प्रसूत करता है। अतः इसमें विस्तार सद्गुणों का ही किया गया है। कठोपनिषद् में यमराज के द्वारा नचिकेता को समझाते हुए किया गया 'श्रेय–प्रेय विवेचन' भी वस्तुतः किसी न किसी रूप में हमें श्रीकृष्णोक्त दैवीय तथा आसुरी मानव–स्वभाव का ही स्मरण कराता है।हम यह भी देखते हैं कि विवेकशील प्राणियों के जीवन–व्यवहार में प्रतिदिन ही सद्गुण रूपी दैवी सेना और दुर्गुण रूपी आसुरी सेना एक दूसरे के सामने तन कर खड़ी होती रहती हैं। सद्–असद् वृत्तियों का जो वैर चित्त में पलता है, आन्तरिक धरातल पर जो अशान्ति और क्लेश चलायमान रहता है वही प्रतिबिम्ब बाहर मूर्तिमान होता है। अतः गीता का जीवनोपयोगी ''शिक्षाशास्त्र' इसी तथ्य को आत्मसात का लेने में निहित है कि बाहर जो हमें शत्रु रूप में दिखाई देता है वह अपने ही विकृत–विचलित मन का साकार प्रतिफलन है। इसलिए अपनी दैवीय एवं आसुरी द्विविध चित्तवृत्तियों के साथ सुसंगति बनाना एवं उन्हें नियंत्रण में लेना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इतना ही नहीं भगवद्गीता समस्त प्राणियों को शुभाचरण के लिए प्रेरित कर जीवनकाल में ही मृत्यु के साथ सामंजस्य बिठाने का रहस्य भी सिखा देती है।

सन्दर्भः–

1. श्रीमद् भगवद्गीता् 9/12
2. श्रीमद् भगवद्गीता, 9/13
3. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/1–3
4. श्रीमद् भगवद्गीता, 12/13–14
5. श्रीमद् भगवद्गीता, 17/8
6. श्रीमद् भगवद्गीता, 9/14
7. श्रीमद् भगवद्गीता, 14/24
8. श्रीमद् भगवद्गीता, 17/10
9. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/11–12
10. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/13–16
11. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/4
12. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/7–10
13. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/21
14. श्रीमद् भगवद्गीता, 16/23